संपादकीय

पंजाब में अमन-चैन को न लगे नजर

अलगाववाद *पनपाने के मंसूबे लेकर कानून-व्यवस्था को चुनौती देने वाले पृथकतावादी 'वारिस पंजाब दे' के मुखिया अमृतपाल की मोगा के रोडे गांव में गिरफ्तारी से देश के अमन-चैन पसंद लोगों ने राहत की सांस ली है। एक महीने से अधिक समय से पुलिस के साथ लुका-छिपी का खेल खेल रहे अमृतपाल को गिरफ्तार करके असम की डिब्रूगढ़ जेल भेज दिया गया है। निस्संदेह, इस घटनाक्रम से देश-विदेश में पंजाब को फिर काले दौर में धकेलने की साजिश करने वालों के मंसूबों पर पानी भी फिरा है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात है कि पंजाब सरकार व पुलिस ने जिस संयम-धैर्य से राज्य की शांत फिजा को बचाये रखने का सार्थक प्रयास किया, उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की जानी चाहिए। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इस मामले में आम आदमी पार्टी से राजनीतिक मतभेद होने के बावजूद केंद्र सरकार ने राज्य की मान सरकार के साथ जिस बखूबी से सामंजस्य स्थापित किया, उससे इस चुनौती से बेहतर ढंग से निबटने में मदद ही मिली। दोनों ही सरकारों ने पंजाब में भाईचारे व अमन की स्थापना के लिये राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राथमिकता दी। कमोबेश देश के अन्य भागों में देश की आंतरिक सुरक्षा के लिये उत्पन्न चुनौतियों के मुकाबले के लिये इस मामले को एक नजीर की तरह लिया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि सीमा पार तथा विदेशों में सक्रिय अलगाववादियों की मदद व उकसावे के बाद अमृतपाल तथा उसके समर्थकों ने 23 फरवरी को अजनाला पुलिस स्टेशन पर हमला करके जो कोहराम मचाया था, उससे आम लोगों में आशंका पैदा हो गई थी कि कहीं यह फिर से पंजाब में काले दौर की पदचाप तो नहीं है। यद्यपि अमृतपाल अपने करीबी की रिहाई कराने में तो कामयाब रहा, लेकिन उसने पुलिस-प्रशासनिक व्यवस्था को जगा दिया। वास्तव में इस घटना ने राज्य सरकार व पुलिस-प्रशासन तथा केंद्र सरकार को चेता दिया कि अब यदि चूके तो पानी सिर के ऊपर से निकलते देर न लगेगी। निस्संदेह, इस घटनाक्रम से विदेशों में सक्रिय अलगाववादियों का मनोबल भी टूटेगा।*

बहरहाल, तात्कालिक रूप से अलगाव की चिंगारी भड़काने की इस कोशिश पर फिलहाल तो विराम लग गया है, लेकिन भविष्य में पुलिस-प्रशासन की किसी भी तरह की चूक अलगाव की समस्या के लिये उर्वरा जमीन तैयार कर सकती है। हमें सीमा पार से की जा रही साजिशों के प्रति सजग रहना होगा। खासकर ड्रोन के जरिये इस अंतर्राष्ट्रीय सीमा के चलते संवेदनशील राज्य में आये दिन गिरायी जा रही हथियारों व नशे की खेपों को लेकर भी सतर्क रहना होगा। बहरहाल, इस प्रकरण में पंजाब पुलिस की पीठ थपथपायी जानी चाहिए। उसने न तो अतिरिक्त बल प्रयोग किया और न ही राज्य के सांप्रदायिक सौहार्द को आंच आने दी। अमृतपाल की लगातार लुका-छिपी के बावजूद उसने संयम बनाये रखा। जगह-जगह उसकी उपस्थिति की सूचना मिलती रही, लेकिन पुलिस-प्रशासन ने हड़बड़ी में कोई कार्रवाई नहीं की। क्रमबद्ध तरीके से अमृतपाल के सहयोगियों को गिरफ्त में लिया। साथ ही उसके बचने के तमाम विकल्पों को धीरे-धीरे खत्म किया। यहां तक कि उसकी पत्नी को विदेश जाने से रोका। यहां राज्य के धार्मिक नेतृत्व की सराहना करनी होगी कि उन्होंने धर्म के नाम पर अलगाव की कोशिशों को तरजीह नहीं दी। बताते हैं इससे पहले बैशाखी पर एक धार्मिक आयोजन के जरिये लोगों का ध्यान खींचते हुए आत्मसमर्पण की कोशिश भी अमृतपाल ने की थी। निस्संदेह, धार्मिक,सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं द्वारा सजगता के साथ अलगाव के मंसूबों को खारिज करने से ही समाज में शांति व सुकून की प्राप्ति संभव है। लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि पंजाब में अमन-चैन के लिये चुनौतियां समाप्त नहीं हुई हैं। इस सीमावर्ती संवेदनशील राज्य में अतिरिक्त सतर्कता की जरूरत है। गिरफ्तारी के वक्त अमृतपाल ने कहा भी है कि यह अंत नहीं, शुरुआत है। ध्यान रखना होगा कि अलगाववाद की किसी कोशिश को समय रहते नियंत्रित कर लिया जाये। जिसके लिये राज्य के पुलिस-प्रशासन का केंद्रीय एजेंसियों में बेहतर तालमेल भी जरूरी है। तभी किसी ऐसे दुस्साहस पर समय रहते लगाम लगायी जा सकेगी। ऐसे में अब अमन-चैन बनाये रखने के लिये सरकार की जिम्मेदारी बढ़ गई है।

युगांडा से सूडान संकट तकः बदलती भारतीय विदेश नीति

दृष्टिकोण

-आर.के. सिन्हा

सूडान में सेना और अर्धसैनिक बल के बीच चल रहे भीषण गृहयुद्ध के चलते वहां के हालात बद से बदतर हैं। वहां फंसे हजारों भारतीयों को सुरक्षित स्वदेश लाने के लिए सारा देश चिंतित है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने सूडान में फंसे भारतीयों को जल्द से जल्द सुरक्षित निकासी के लिए विदेश मंत्रालय के अधिकारियों को निर्देश दिए हैं । मतलब यह कि अब सरकार एक्शन मोड में आ गई है।

यह बदले हुए मजबूत भारत का नया चेहरा है। अब जहां पर भी भारतवंशी या भारतीय संकट में होते हैं, तो भारत सरकार पहले की तरह हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठती। आपको याद ही होगा कि रूस-यूक्रेन जंग के कारण हजारों भारतीय मेडिकल छात्र-छात्रायें यूक्रेन में फंस गए थे। उन्हें भारत सरकार तत्काल सुरक्षित स्वेदश लेकर आई। भारत के हजारों विद्यार्थी यूक्रेन में थे। वे वहां पर मेडिकल, डेंटल, नर्सिंग और दूसरे पेशेवर कोर्स कर रहे थे। ये रूस-यूक्रेन जंग को देखते हुए वहां से निकल कर स्वदेश आना चाहते थे। पहले तो किसी को समझ में ही नहीं आ रहा था कि इतनी अधिक संख्या में यूक्रेन की राजधानी कीव और दूसरे शहरों में पढ़ रहे भारतीय नौजवानों को स्वदेश कैसा लाया जाएगा। पर इच्छा शक्ति हो तो सब कुछ संभव है। यह साबित करके दिखाया गया।

अब अफगानिस्तान में गृहयुद्ध के दिनों की ही बात को जरा याद कर लें। भारतीय वायुसेना और एयर इंडिया के विमान लगातार अफगानिस्तान से भारतीयों को लेकर स्वदेश आते रहे। काबुल में जिस तरह के हालात बन गए थे उसमें सारे भारतीयों को लेकर तालिबानी आतंकियों के बीच से लेकर आना कोई छोटी बात नहीं थी- इनको ताजिकिस्तान के रास्ते दिल्ली या देश के अन्य भागों में लाया गया। कुछ विमान कतर के रास्ते से भी आए। उस वक्त भारत के अफगानिस्तान में दर्जनों विकास के बड़े प्रोजेक्ट चल रहे थे, इनमें अफगानिस्तान को नये तरह से खड़ा करने के लिए भारत हर तरह की मदद भी कर रहा था। भारत के हजारों करोड़ रुपये के प्रोजेक्ट फंस गए थे। इन प्रोजेक्ट्स से हजारों भारतीय जुड़े हुए थे। इन्हीं भारतीयों को सुरक्षित निकाला जा रहा था।

भारत की तरफ से अफगानिस्तान बांध से लेकर स्कूल, बिजली घर से लेकर सड़कें, काबुल की संसद भवन से लेकर पावर इंफ्रा प्रोजेक्ट्स और हेल्थ सेक्टर आदि समेत न जाने कितनी परियोजनाओं को तैयार किया जा रहा था। लेकिन, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अफगानिस्तान से देश के नागरिकों की सुरक्षित स्वदेश वापसी सुनिश्चित करने और वहां से भारत आने के इच्छुक सिखों और हिंदुओं को भी भारत में शरण देने का अधिकारियों को निर्देश दिया। अफगानिस्तान की सत्ता पर तालिबान के नियंत्रण के बाद ही आने वाली परिस्थितियों को भांपते हुए भारत सरकार सक्रिय हो गई थी। जाहिर है, ये सब कदम उठाने के बाद भारत सरकार का इकबाल न केवल देश के अंदर बल्कि विदेशों में भी बुलंद हुआ। अब आगे बढ़ने से पहले 1972 के दौर में चलते हैं। अब बुजुर्ग हो रहे भारतीयों को याद ही होगा कि सन 1972 में अफ्रीकी देश युगांडा के तानाशाह ईदी अमीन ने अपने देश में रहने वाले हजारों भारतीयों को रातों रात आदेश दे दिया था कि वे सभी 90 दिनों में देश को छोड़ दें। हालांकि भारतीय ही युगांडा की अर्थव्यवस्था की जान थे। पर सनकी अमीन कभी भी और कुछ भी कर देता था। उसके फैसले से वहां दशकों से रहने वाले भारतवंशियों के सामने बड़ा भारी संकट खड़ा हो गया था । तब ब्रिटेन ने उन भारतीयों को अपने यहां शरण दी थी। तब हमारी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सरकार ने उन भारतवंशियों के लिए कुछ नहीं किया था। ऐसा उन्होंने क्यों किया यह लोगों को अचम्भे में डालने वाला था ढ्ढ क्योंकि, वे कोई कमजोर प्रधानमंत्री तो थी नहीं ढ्ढ उस समय बांग्लादेश की आजादी और पाकिस्तान के 93000 सैनिकों के आत्मसमर्पण के बाद उनके शोहरत का डंका बज रहा था ढ्ढ लेकिन, उन्होंने कोई ठोस कदम नहीं उठाए पता नहीं क्यों।

भारतीय युगांडा में लुटते-पिटते रहे। हमने घड़ियाली आंसू बहाने के सिवा कुछ नहीं किया था। उन भारतीयों को हमसे अभी तक गिला है। और होना भी चाहिए । क्या हम सात समंदर पार जाकर बस गए बहादुर उद्योगपति भारतीयों से सिर्फ यही उम्मीद रखें कि वे भारत में आकर निवेश करें

आज का भारत चुनौती का सामना करता है। भारत की बदली हुई विदेश नीति के चलते ही हमने टोगो में जेल में बंद पांच भारतीयों को सुरक्षित रिहा करवाया था। ये सब के सब केरल से थे। टोगो पश्चिमी अफ्रीका का एक छोटा सा देश है। भारत सरकार 2015 में यमन में फंसे हजारों भारतीयों को सुरक्षित स्वदेश लाई थी। वह अपने आप में एक मिसाल है। भारतीय नौसेना के युद्धपोत आईएनएस सुमित्रा से इन्हें पहले जिबूती ले जाया गया था। जिबूती से इन लोगों को चार विमानों से भारत वापस लाया गया। उस समय यमन के हूती विद्रोहियों के खिलाफ सऊदी अरब के नेतृत्व वाली गठबंधन सेना ने सैन्य कार्रवाई शुरू की थी, जिसमें हजारों भारतीय फंस गए थे ।

अब भारत सरकार के सामने सूडान से भारत के नागरिकों को लाने की बड़ी चुनौती है। प्रधानमंत्री मोदी खुद सूडान से भारतीयों को वापस लाने के काम पर लगातार नजर रख रहे हैं। सूडान में चल रहे गृह युद्ध में कुछ भारतीयों के हताहत होने की भी खबरें हैं। सूडान में 3000 से अधिक भारतीय इस समय फंसे हुए हैं। राजधानी खार्तूम में संघर्ष की वजह से इनकी निकासी में मुश्किल आ रही है। बहरहाल, यह दुखद है कि भारत के मित्र देश सूडान में इतना गंभीर आतंरिक संकट चल रहा है। भारतीय विशेषज्ञ सूडान के वानिकी क्षेत्र के विकास में सन 1910 से सक्रिय हैं। महात्मा गांधी ने 1935 में इंग्लैंड जाते समय पोर्ट सूडान का दौरा किया था और सूडान में बसे भारतवंशियों से मुलाकात की थी । पंडित जवाहरलाल नेहरू भी 1938 में सूडान गए थे। भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त सुकुमार सेन ने 1953 में पहले सूडानी संसदीय चुनावों का निरीक्षण किया। 1957 में स्थापित सूडानी चुनाव आयोग ने भारतीय चुनाव कानूनों और प्रथाओं से प्रेरणा प्राप्त की। भारत ने फरवरी 1954 में स्थापित सूडानीकरण समिति को वित्तीय सहायता प्रदान की, जिसे स्वतंत्रता के बाद सूडानी सरकार में ब्रिटिश कर्मचारियों की जगह लेने का काम सौंपा गया था।

हड़ताल का मनोविज्ञान समझने की जरूरत

दृष्टिकोण

-सियाराम पांडेय शांत

विरोध -प्रदर्शन, सत्याग्रह, हड़ताल और आंदोलन लोकतंत्र के ऐसे हथियार हैं जो अपनी जिम्मेदारी को भूल बैठे सत्ताधीशों को कुम्भकर्णी नींद से जगाने में अहम भूमिका निभाते हैं। लेकिन हर आंदोलन की अपनी मर्यादा होती है।अपनी आधार भूमि होती है। अपना उद्देश्य होता है। बात-बात पर होने वाले आंदोलन देश का मार्गदर्शन तो करते नहीं, अलबत्ता परेशानी और चिंता का ग्राफ जरूर बढ़ा देते हैं।

बिना सिर-पैर के आंदोलनों से वैसे भी किसी का भला नहीं होता। नुकसान अधिकांश जनता का होता है। यातायात जाम में फंसे देश को रोज कितना जान-माल का नुकसान होता है, यह किसी से छिपा नहीं है। किसान आंदोलन के नाम पर जब रेल ट्रैक जाम कर दिए जाते हैं या सरकारी वाहनों को आग के हवाले कर दिया जाता है तो इससे देश की कितनी क्षति होती है, इसे आवेशित आंदोलनकारी नहीं समझ सकते, लेकिन देश को समझना होगा। हड़ताल का अपना मनोविज्ञान होता है। वह कुछ तिकड़मबाजों के लिए तो फायदेमंद होती है लेकिन जरूरी नहीं कि हड़ताल में शामिल हर आंदोलनकारी तक लाभ की किरण पहुंचे ही। जो जिस विभाग से जुड़ा है, उसकी समस्याओं को लेकर हड़ताल हो तो बात समझ में आती है लेकिन सस्ती लोकप्रियता के लिए किसी भी मुद्दे को लपक लेना और उस पर आंदोलन करते हुए देश को परेशानी में डालना किसी भी लिहाज से उचित नहीं है। इसलिए देश में आंदोलनों को लेकर एक आचार संहिता तो बननी ही चाहिए। हड़ताल को देश पर थोपना क्यों जरूरी है, यह बात देश को बताई तो जानी ही चाहिए।

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने वकीलों की हड़ताल पर न केवल नाराजगी जाहिर की है बल्कि यह भी कहा है कि वकील न तो हड़ताल पर जा सकते हैं और न ही काम बंद कर सकते हैं। शीर्ष अदालत का तर्क है कि वकीलों की हड़ताल से अदालतों में मुकदमों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। शीर्ष अदालत के इस तर्क में दम है। यह पहला मौका नहीं जब सुप्रीम कोर्ट ने इस तरह की तल्ख टिप्पणी की है। वर्ष 2019-20 में भी उत्तराखंड के वकीलों की हड़ताल पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों ने कुछ ऐसी ही टिप्पणी की थी। मौजूदा टिप्पणी भी उत्तराखंड के ही संदर्भ में है। ऐसा भी नहीं कि उत्तराखंड अकेला राज्य है, जहां हड़ताल पर सुप्रीम कोर्ट कोर्ट तल्ख होता नजर आया है। सवाल यह है कि शीर्ष अदालत को बार-बार इस तरह की टिप्पणी करनी क्यों पड़ रही है और अधिवक्ता हड़ताल को लेकर उसके आदेशों की अनदेखी क्यों कर रहे हैं यह बार और बेंच के बीच समन्वयहीनता नहीं तो और क्या है उत्तराखंड के वकीलों का 35 साल से हर शनिवार को हड़ताल का सिलसिला चला आ रहा था। जाहिर है कि बार और बेंच के बीच कुछ तो जटिलता है जो ठीक नहीं हो पा रही है। देश की शीर्ष अदालत भी सब समझती है लेकिन वह फुंसी को नासूर बनते भी तो नहीं देख सकती। सो, इस बार के अपने निर्णय में उसने निदान का तत्व भी तलाशने की कोशिश की है। सभी उच्च न्यायालयों को मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में वकीलों की शिकायतों के निवारण के लिए राज्यस्तरीय समिति गठित करने के निर्देश दिए हैं। अपने निर्णय में उसने निचली अदालत के वकीलों के हितों और उनकी समस्याओं का भी ध्यान रखा है। जिला स्तर पर भी इस तरह की समिति गठित करने के निर्देश दिए हैं। यह एक स्वस्थ और सकारात्मक पहल है। बार और बेंच के टकराव घटाकर ही न्यायालयों में कामकाज की स्थिति सुचारू हो सकती है।

रही बात अदालतों में केसों का पहाड़ खड़ा होने की तो जितना बैकलॉग खत्म नहीं होता, उससे अधिक मुकदमे रोज हर अदालतों में उपस्थित हो जाते हैं। 7 दिसंबर, 2022 को केंद्रीय विधि मंत्री किरन रिजीजू ने राज्यसभा में जो जानकारी दी थी, वह बेहद चौंकाने वाली है। उनके मुताबिक देश के 25 उच्च न्यायालयों में 5894060 मुकदमें लंबित हैं, जिसमें 10 लाख से अधिक मुकदमें तो अकेले इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लंबित हैं। पटना उच्च न्यायालय में लंबित वादों की संख्या जहां 260917 है,वहीं गुजरात हाई कोर्ट में 157104 और उत्तराखंड उच्च न्यायालय में 43172 वाद लंबित हैं। सर्वोच्च न्यायालय में 11049 मामले ऐसे हैं जो एक दशक से अधिक समय से लंबित है। बात अगर निचली अदालतों की करें तो वहां चार करोड़ 34 लाख से अधिक मामले लंबित हैं। पर्यावरणीय अपराध से जुड़े 9.36 लाख मामले भी देश की अदालतों में लंबित है। ऐसे में आए दिन होने वाली वकीलों की हड़ताल चिंता तो बढ़ाती ही है। इस तरह की हड़ताल पर तत्काल अंकुश लगाए जाने की जरूरत है। 20 फरवरी, 2020 को सर्वोच्च न्यायालय ने देहरादून, ऊधम सिंह नगर और हरिद्वार जिले की निचली अदालतों में 35 साल से हर शनिवार को होने वाली हड़ताल को अवैध ठहराया था और बार काउंसिल ऑफ इंडिया व राज्य काउंसिल ऑफ इंडिया को ऐसे वकीलों के खिलाफ कार्रवाई के निर्देश दिए थे। देश के मौजूदा प्रधान न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने गत 21 दिसंबर 2022 को आंध्र प्रदेश में कहा था कि देश की न्यायिक व्यवस्था को तारीख पर तारीख वाली छवि बदलने की जरूरत है। यह अपील काबिल-ए-गौर है। जिस देश की निचली अदालतों में 63 लाख मामले इसलिए लंबित हैं कि उन्हें लड़ने के लिए वकील ही नहीं है। उस देश में आए दिन होने वाली वकीलों की हड़ताल समझ से परे है। वैसे भी इन दिनों वकील जिस तरह के मुद्दों को लेकर हड़ताल कर रहे हैं, उसका न्यायिक सेवाओं से कोई मतलब नहीं है।

आजकल

अदालत परिसर में हिंसा

दिल्ली के साकेत स्थित अदालत परिसर में जिस तरह गोलीबारी की घटना हुई, उससे एक बार फिर राजधानी और खासकर न्यायालयों के दायरे में सुरक्षा-तंत्र की हकीकत का ही पता चलता है। हालांकि दिल्ली में हर स्तर पर सुरक्षा व्यवस्था के चाक-चौबंद रहने और उसमें किसी भी मोर्चे पर कोताही न बरतने के दावे अक्सर किए जाते रहते हैं। लेकिन आए दिन बाकी जगहों के अलावा संवेदनशील परिसरों के भीतर भी जैसी हिंसा के वाकये सामने आते हैं, उससे यही लगता है कि जमीनी स्तर पर सुरक्षा-व्यवस्था की रणनीति में अभी बड़ी खामियां मौजूद हैं।

शुक्रवार को साकेत अदालत परिसर में एक महिला पर निलंबित वकील ने वहां मौजूद बहुत सारे लोगों के बीच गोलियां चलानी शुरू कर दी और फरार भी हो गया। बाद में उसे गिरफ्तार किया जा सका। गनीमत थी कि गोली लगने के बावजूद महिला की जान किसी तरह बच गई। खबरों के मुताबिक इस हमले के पीछे पच्चीस लाख रुपए की लेनदेन से जुड़ा विवाद है, जिसे लेकर पुलिस के पास भी मामले दर्ज हैं। महिला उसी सिलसिले में अदालत में गवाही के लिए पहुंची थी।

देश की राजधानी होने के नाते उम्मीद की जाती है कि दिल्ली में बाकी जगहों के मुकाबले सुरक्षा के इंतजाम ज्यादा बेहतर होंगे और किसी व्यक्ति के लिए अपनी आपराधिक मंशा पूरी करना इतना आसान नहीं होगा। उसमें भी अदालत जैसी संवेदनशील जगह पर सुरक्षा-व्यवस्था के उच्चतम मानकों को सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है। अन्य अदालतों की तरह साकेत परिसर में बहुस्तरीय सुरक्षा इंतजामों की व्यवस्था की गई है। अदालत में प्रवेश के लिए बने दरवाजों पर जांच के लिए सीसीटीवी कैमरों से लेकर मेटल डिटेक्टर सहित अन्य उपाय मौजूद हैं। लेकिन हैरानी की बात है कि इसके बावजूद एक व्यक्ति पिस्तौल जैसा घातक हथियार लेकर परिसर के भीतर प्रवेश कर गया और सरेआम उसने हत्या का प्रयास किया। सवाल है कि सुरक्षा में इतने बड़े स्तर पर चूक हुई, तो इसके क्या कारण हैं और इसके लिए किसकी जिम्मेदारी तय की जाएगी।

योग्यता के आधार पर हो नुमाइंदे का चुनाव

राजनीति

-आरती लोहानी

माफिया डॉन अतीक अहमद के मारे जाने से अन्य कई जरूरी मुद्दे छिप गए हैं या यूं कहा जाये कि छिपा दिए गए हैं। अतीक अहमद माफ़िया था परंतु यह भी सच है कि वह एक चुना हुआ सांसद था। इलाहाबाद सीट, जहां से देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू चुनकर आये थे उसी सीट से अतीक अहमद भी चयनित होता था। तात्पर्य यह है कि नेहरू जी और अतीक की कोई बराबरी नहीं है फिर भी दोनों जनता की ताकत से चुने जाते थे।

जहां एक ओर नेहरू जी विद्वान, शिक्षित और दूरदर्शी थे वहीं उनके मतदाता कम पढ़े-लिखे रहे होंगे क्योंकि इस वक्त शिक्षा का स्तर आज की तरह नहीं था और न ही उस वक्त सभी बच्चों की स्कूल तक पहुंच थी। फिर भी उस वक्त जनता ने उस विज़न को चुना जो देश को तरक्की की ओर ले गया, जिस सोच ने वर्तमान विकसित भारत को गढ़ा और जिस विचारधारा ने न केवल भारत बल्कि विदेशी जमीन पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। वहीं अतीक के केस में यह सब नहीं है। हां, इतना जरूर है कि नेहरू जी के तत्कालीन मतदाताओं की ही वर्तमान पीढ़ी अतीक की समर्थक है। यह सच है कि ये पीढ़ी पढ़ी-लिखी है परंतु तार्किकता और बौद्धिक निर्णय लेने में उस पीढ़ी से कमतर ही मानी जायेगी। जरा सोचें कि मतदाता का कर्तव्य क्या होता है और मतदाता कौन होता है दरअसल, एक लोकतांत्रिक देश में अपनी पसंद का नेता चुनने वाला मतदाता ही होता है जिसके पास यह ताक़त होती है कि वह अपने एक वोट की ताकत से सत्ता-परिवर्तन कर सकता है। परंतु अगर यही मतदाता महज सम्प्रदाय, भाषा या किसी लालच के चलते बाहुबलियों, दुराचारियों या माफियाओं को चुनकर सत्ता तक भेजता है तो देश की इस हालत के लिए वह बराबर का दोषी है। वोटर की ऐसी गलती से वर्तमान ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियां भी प्रभावित होती हैं। वजह यह कि जनता अपराधियों को चुनकर जब सत्ता पर काबिज़ करेगी तो विज्ञान, इतिहास, भूगोल, पर्यावरण, नैतिकता और मूल्यों का हनन ही होगा। अपराधी मनुष्य अपने कृत्यों से समाज का नुकसान ही करता है।

वोट देने से पहले उम्मीदवार की शैक्षिक योग्यता, नैतिक मूल्य, वैचारिक रुझान और सेवा भाव वाले पक्ष को देखना-समझना जरूरी है न कि केवल धार्मिक पक्ष को। परन्तु पिछले कुछ दशकों से देश की राजनीति की धुरी में धार्मिक स्थल और उनसे जुड़े मुद्दे ज्यादा हावी रहे हैं। धर्म-मजहब के नाम पर हिंसा का माहौल और सरकारों का बनना-बिगड़ना इस बात को इंगित करता है कि विकास की सही दिशा को छोड़ हम पीछे की तरफ जा रहे हैं। धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है और घर की दहलीज पार करते ही कोई भी इंसान संकीर्ण व्यवहार न करे तो ज्यादा अच्छा है। क्योंकि धर्म के नाम पर कट्टर होना पूरे समाज के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। धर्म तो मुहब्बत, परोपकार, दया और करुणा सिखाता है। इसके विपरीत जब धर्म की आड़ में हिंसा होने लगे तो यह उस व्यक्ति समेत पूरे समाज व राष्ट्र को प्रभावित करता है। इसलिए मतदाता को यह भली-भांति समझना होगा कि जो उम्मीदवार केवल धर्म का सहारा लेकर उसके पास वोट मांगने आये उसे उसी समय वापस भेज दो और वोट देकर सत्ता तक पहुंचने में उसकी मदद न की जाये। ऐसे भी उदाहरण हैं कि हमारे कई माननीय अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के लिए उच्च संस्थानों में भेजते हैं और मंचों से भाषण देकर गरीब, वंचित वर्ग के लोगों के बच्चों को दंगई बनाने में कहीं न कहीं उनकी भूमिका पायी जाती है। इसलिए वोट देते वक्त उम्मीदवार की पृष्ठभूमि जरूर पता होनी चाहिए। धर्म-मजहब के नाम पर लड़ने वाले आम कार्यकर्ता के बच्चे क्या इससे पेट भर पाएंगे यह वोट देने से पहले सोचना चाहिए। मतदाता को तार्किक होना जरूरी है न कि किसी दल के प्रति श्रद्धा भाव रखने वाला क्योंकि इससे वह अपने राजनैतिक आका को आत्ममुग्ध बना सकता है जो स्थिति राष्ट्र के विकास में बाधक साबित होती है। हर पांच साल में जब नेता वोट मांगने निकले तो जनता को अपने सवालों के जवाब मांगने चाहिए कि इन पांच सालों में उसने उनके लिए क्या किया। मौजूदा समय में यह बहुत जरूरी है जब सारी दुनिया आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आदि तकनीकी के बल पर बहुत आगे निकल चुकी है और हम आज भी पूजा-इबादत स्थलों के फेर में ही उलझे हैं। ऐसे वक्त में जब टेक्नॉलोजी ने मानव सभ्यता को असम्भव-सी लगने वाली चीजों से भी परिचित करवा दिया है हम आज भी किसी उम्मीदवार को महज इसलिए वोट दे देते हैं कि उसने संप्रदाय विशेष का चोगा पहना हुआ है। मतदाता अपनी जिम्मेदारी अगर सही से समझ जाएगा तो नाटकीयता से युक्त लोगों को कभी भी सत्ता के आसपास नहीं फटकने देगा।

इसी प्रकार यदि कोई भी पार्टी किसी अपराधी को टिकट देती है तो वह इसके लिए जिम्मेदार होती है लेकिन अगर वह अपराधी चुनकर संसद तक जाता है तो इसमें उस जनता की भागीदारी भी बराबर की होती है जो उसे वोट देती है। इसलिए एक जिम्मेदार मतदाता को तार्किक और ईमानदार होना जरूरी है क्योंकि उसके एक बटन दबाने का फैसला उसकी आने वाली नस्लों को भी प्रभावित करने की ताकत रखता है।